संपादक की कलम से.....

तब की चौपाल अब की चौपाल

रामअवतार बैरवा

समय की परतों को गर सलीके से खोला जाए तो हमारा मन अनुभवों को साथ लिए गांव की लीक और पगडंडियों से होता हुआ बरगद के नीचे उस कुएं के पास बने चबूतरे तक पहुंच जाता है, जहां माटी से सौंधी महक फिर से वहीं बसने और रहने को ललचाती है पर बच्चों की जिद के आगे सारे सपने दो कमरे के छोटे से फ्लैट में सिमटकर रह जाते हैं। ड्राइंग रूम है पर वहां अगर सोफा रख दिया जाए तो फिर पलंग की गुंजाइश नहीं बचती है। घर में भले टीवी, फ्रीज, ऐसी, कूलर , होटकेस, सहित सारी सुविधाएं हैं। छोटी-छोटी अंगुलियों से पूरी दुनिया को देख लेने की शक्ति भी है पर पता नहीं क्यों वो आठ बजे सो जाने और पांच बजे जग जाने वाली गांव जैसी नींद नहीं आती। एक तो वो विदेशी नस्ल का कुत्ता रात भर भौंकता है। मात्र दो, बाई चार की बाल्कनी के पास वाला कमरा ही मां -बाप के हिस्से में आता है। जिसमें आधी जगह तो खराब सामानों ; यूं कहें कि कबाड़ से भरी रहती है और आधी बच्चों के खेल खिलोनों से। अखबारों की रद्दी और जूते चप्पलें सब भी वहीं रखे होते हैं। चारपाई के पास पत्थर की बनी स्थाई अलमीरा में स्कूल, कालेज और अन्य संस्थानों से मिली अपनी और बच्चों की छोटी-बड़ी ट्रोफियां और गांधी, बुद्ध वग़ैरह की मूर्तियां रखी रहती हैं। चुहे जब चाहे उन्हें गिरा देते हैं। घर का मुखिया होने के नाते, उन्हें वो ड्राइंग रूम में शिफ्ट करवाने का नैतिक साहस नहीं जुटा पाते। हां कभी-कभार आफिस का उच्च अधिकारी या कोई बड़ा व्यक्ति घर पर आता है तब उनके रहने तक इन सबको ड्राइंग रूम में रखी फैंसी अलमीरा में रख दिया जाता है और दादा-दादी को बाहर पार्क में घूम आने की सलाह दे दी जाती है। झूठी शान बखारते वक्त उनकी खांसी बहुत खलल डालती है।

वैसे भी ज़माना अब टोका-टाकी का नहीं रहा , अपनी -अपनी कहते रहने और दूसरे की सुनते रहने का रह गया है। कहने के नाम पर आप अच्छा-बुरा कमेंट कर सकते हैं। बुरे को भी पोस्ट करने वाला बिना पढ़े एक बार तो लाइक कर ही देता है। बाद में भले उसे अन्फ्रेंड करदे। दादा - दादी को घर में बैठकर एक-दो काजू-बादाम खाने से अधिक स्वाद पार्क की विषैली ही सही पर उस हवा को खाने में आता है, जिसमें देशी छाछ, घी, दाल, दलिया और खिचड़ी आदि की महक सुंघाई नहीं, दिखाई पड़ती है। दो-चार हम विचार वाले साथी मिल जाते हैं तो वहां आयोजित किस्सागोई, उसी चौपाल की याद दिला देती है, जिसमें अपवाद भी शामिल था, तर्क भी, अर्थ भी, उत्साह भी, ललक भी, सार्थकता और प्रेरणा भी।

उस समय घरों में आंगन तो बहुत बड़ा था पर दो-तीन छप्पर से अधिक बनवाने का गुरूर कोई नहीं पालता था। जब तक चौपाल पर दिनभर के दुःख-दर्द सांझा किए जाते थे , घरों में बहू-बेटियां खाना बना लिया करती थीं। जेठ- ससुर के रहते हुए चूल्हे में फूंक देने से बहू को घूंघट उपर करते हुए देखने की ग्लानि उन्हें कई दिनों तक अपनी ही नज़रों से गिराए रखती थी। गर्मियों में तो खासकर यह दिक्कत और बढ़ जाता करती थीं कि वह किस पल्लू से पसीना पोंछे और किस पल्लू से पास बैठे बच्चे को हवा करे। सर्दियों में छप्पर के अंदर ही खाना बना करता था, आंगन की लकड़ियां ओस में भीग जाया करती थी, छप्पर में उन्हें बचाकर इसलिए नहीं रखा जा सकता था कि कोई सांप -बिच्छू उनसे लिपटकर छप्पर में न चला जाए। इसलिए शाम को दीया-बाती करने से लेकर भोजन करने तक का समय चौपाल पर बिताना आवश्यकता का आविष्कार था। जोट-तमाशों का आविष्कार भी आवश्यकता ही थी। शादी-ब्याह में बारात तीन-तीन रात को रूका करती थी। बारात को सुलाने के लिए पूरे गांव के बिस्तर भी कम पड़ जाया करते थे, उन्हें रात भर जगाए रखने के लिए ये आविष्कार पनपा। भालू और बंदर नचाने के खेल से हमारी प्रकृति बची हुई थी। पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं के प्रति स्नेह पंजाब और उत्तराखंड जैसे बाढ़ वाले हालात से सचेत रखते थे। ऐसा भी नहीं है कि उन दिनों बाढ़ नहीं आया करती थी, आती थी पर बरगद, नीम, पीपल, तालाब, घाटी, पर्वत, पठार सब मिलकर जिन्दगियों को बचा लिया करते थे। अब ये खुद ही नहीं बचे तो इंसान, गाय, भैंस, बकरियां किससे टकराकर रूकें ? पुल बनाते समय जो आधा सीमेंट नेताओं और अधिकारियों ने अपने घरों में लगाया था, न वो घर ही बचे, न पुल। अब सोशल मीडिया पर वीडियो देखते रहो। फलां क्रिकेटर ने, फलां फिल्मी सितारे ने इतना चंदा दिया, इतने गांव गोद लिए, उतने गांव गोद लिए पर जिनकी गोदी के मासूम लाल गिरे हुए पुल की ओट पर बन गई एक खोली में तीन दिन तक मौत से लड़ते रहे, उसे कौनसा सितारा देखेगा? कौन अपनी गोदी देगा ? हां, आकाश पर मौजूद असली सितारा अवश्य बार -बार आगाह कर रहा है - संभल जाओ, सुधर जाओ, वक्त अभी है।
उस समय की चौपाल पर की गई बातों में बाढ़ और अकाल का अनुमान शामिल था। लोग महीनों पहले सुरक्षा का पूरा बंदोबस्त कर लिया करते थे। घाघ और भड्डरी ने यह सब मोटे तौर पर ही नहीं कह दिया था -
'यदि पूरब का बादल पश्चिम को जाता हो तो शीघ्र वर्षा होगी- मोटी रोटी पकाकर झटपट खा लेनी चाहिये। पतली रोटी पकाने के फेर में नहीं पड़ना चाहिये। यदि पश्चिम का बादल पूरब को जाता हो तो इत्मीनान से पतली रोटी पकानी चाहिये। यदि शाम को पूरब दिशा में इन्द्रधनुष उगे तो घाघ कहते हैं वर्षा की झड़ी लग जायेगी। बाढ़ आना निश्चित है। '

अब शहरों में पोल्यूशन के आगे चांद तारे दिखते ही नहीं, इन्द्रधनुष किस पेड़ की ओट से देखा

जाए। इंटरनेट की खबरों और किस्सों से ही अनुमान लगाया जाता है। खबर फैलने से पहले पानी सर से गुजर चुका होता है। फिर ए आई और उससे जुड़ी अनेक साइट पर अनसुनी और अनदेखी पोस्ट सबको चमत्कृत कर देती है।

सौभाग्य से दुष्यंत कुमार का ग़ज़ल संग्रह "साए में धूप" अपने गहरे अस्तित्व के पचासवें वर्ष से गुजर रहा है। पचास बरस पहले इन्हीं दिनों में वो लिख रहे थे -

'इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही सही लहरों से टकराती तो है।
निर्वचन मैदान में लेटी हुई नदी, पत्थरों से ओट में जाकर बतियाती तो है ।'

उस समय नदियां , किनारों से , पेड़ -पौधों से मवेशियों से बातें किया करती थीं। अब ऊंची - ऊंची बहुमंजिला इमारतों से बातें करती है। ये इमारतें उन्हें पेड़ -पौधों और मवेशियों सरीखा अपनापन नहीं दे पातीं। उन्हें तनिक विश्राम करने का आसरा नहीं देती। सीमेंट और लोहा मिलकर कई फिट गहराई तक नींव में घुसकर उसे रोकने का प्रयास तो करते हैं पर शायद वो यह भूल जाते हैं कि नदी की जड़ें बहुत गहरी होती हैं।

चौपाल के किस्सों में स्वच्छ, स्वस्थ, स्पष्ट और किसी उद्देश्य को प्रकट करने वाली भावना समाहित होती थीं और एक हद तक ये लुभाने में कामयाब भी हुआ करती थीं। यूं चौपाल आज भी फेसबुक, ट्विटर, वाट्सएप और इंस्टा पर लगती है और खूब लगती है पर इसमें खुद की कही हुई बात भी बगल वाले कमरे में बैठे अपने ही भाई को झूठ लगती है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और इसके तमाम सहयोगी आपके लफ्ज़ और आपकी सूरत को पूरी तरह बदल देने की ताकत रखते हैं। अपनी ही शक्ल किसी और जैसी लगने लगती हैं। दिन भी रात से लगते हैं। सच भी सपने से लगते हैं। और तो और अब ये हमारे कमरे में घुसकर हमारी अलमीरा खंगाल रहे हैं। हमारे बैंक खातों में ताक-झांक कर रहे हैं। हमारे हृदय में झांकने लगे हैं। हमारे विचारों को भांपने लगे हैं। वो सौभाग्यशाली हैं, जिनके दादा-दादी जिंदा हैं और वो इसकी जद से बाहर हैं। घर इनके होने तक घर रहेंगे, परिवार इनके रहने तक परिवार रहेंगे। संभावनाएं बहुत कम है कि वो गांव की चौपाल के दिन फिर से लौटें पर ये सुनिश्चित है कि आने वाले बीस-पच्चीस बरस में हम किसी ऐसे गृह को खोज लेंगे, जहां इस भौतिकता से दूर फिर से एक छोटा सा गांव होगा, वहीं चौपाल होगी और वही सच्ची और अच्छी बातें होंगी।